री लक्ष्मण-सुमित्रा संवाद

चौपाई :

*** धीरजु धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदु बानी॥ तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही॥1॥

भावार्थ:

परन्तु कुसमय जानकर धैर्य धारण किया और स्वभाव से ही हित चाहने वाली सुमित्राजी कोमल वाणी से बोलीं- हे तात! जानकीजी तुम्हारी माता हैं और सब प्रकार से स्नेह करने वाले श्री रामचन्द्रजी तुम्हारे पिता हैं!॥1॥

*** अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू॥ जौं पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥2॥

भावार्थ:

जहाँ श्री रामजी का निवास हो वहीं अयोध्या है। जहाँ सूर्य का प्रकाश हो वहीं दिन है। यदि निश्चय ही सीता-राम वन को जाते हैं, तो अयोध्या में तुम्हारा कुछ भी काम नहीं है॥2॥

*** गुर पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं॥ रामु प्रानप्रियजीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के॥3॥

भावार्थ:

गुरु, पिता, माता, भाई, देवता और स्वामी, इन सबकी सेवा प्राण के समान करनी चाहिए। फिर श्री रामचन्द्रजी तो प्राणों के भी प्रिय हैं, हृदय के भी जीवन हैं और सभी के स्वार्थरहित सखा हैं॥3॥

*** पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहिं राम के नातें॥ अस जियँ जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू॥4॥

भावार्थ:

जगत में जहाँ तक पूजनीय और परम प्रिय लोग हैं, वे सब रामजी के नाते से ही (पूजनीय और परम प्रिय) मानने योग्य हैं। हृदय में ऐसा जानकर, हे तात! उनके साथ वन जाओ और जगत में जीने का लाभ उठाओ!॥4॥

दोहा :

*** भूरि भाग भाजनु भयहु मोहि समेत बलि जाउँ। जौं तुम्हरें मन छाड़ि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ॥74॥

भावार्थ:

मैं बलिहारी जाती हूँ, (हे पुत्र!) मेरे समेत तुम बड़े ही सौभाग्य के पात्र हुए, जो तुम्हारे चित्त ने छल छोड़कर श्री राम के चरणों में स्थान प्राप्त किया है॥74॥

चौपाई :

*** पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥ नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत तें हित जानी॥1॥

भावार्थ:

संसार में वही युवती स्त्री पुत्रवती है, जिसका पुत्र श्री रघुनाथजी का भक्त हो। नहीं तो जो राम से विमुख पुत्र से अपना हित जानती है, वह तो बाँझ ही अच्छी। पशु की भाँति उसका ब्याना (पुत्र प्रसव करना) व्यर्थ ही है॥1॥

*** तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥ सकल सुकृत कर बड़ फलु एहू। राम सीय पद सहज सनेहू॥2॥

भावार्थ:

तुम्हारे ही भाग्य से श्री रामजी वन को जा रहे हैं। हे तात! दूसरा कोई कारण नहीं है। सम्पूर्ण पुण्यों का सबसे बड़ा फल यही है कि श्री सीतारामजी के चरणों में स्वाभाविक प्रेम हो॥2॥

*** रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू॥ सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥3॥

भावार्थ:

राग, रोष, ईर्षा, मद और मोह- इनके वश स्वप्न में भी मत होना। सब प्रकार के विकारों का त्याग कर मन, वचन और कर्म से श्री सीतारामजी की सेवा करना॥3॥

*** तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू। सँग पितु मातु रामु सिय जासू॥ जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥4॥

भावार्थ:

तुमको वन में सब प्रकार से आराम है, जिसके साथ श्री रामजी और सीताजी रूप पिता-माता हैं। हे पुत्र! तुम वही करना जिससे श्री रामचन्द्रजी वन में क्लेश न पावें, मेरा यही उपदेश है॥4॥

छन्द :

*** उपदेसु यहु जेहिं तात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं। पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं॥ तुलसी प्रभुहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई। रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित-नित नई॥

भावार्थ:

हे तात! मेरा यही उपदेश है (अर्थात तुम वही करना), जिससे वन में तुम्हारे कारण श्री रामजी और सीताजी सुख पावें और पिता, माता, प्रिय परिवार तथा नगर के सुखों की याद भूल जाएँ। तुलसीदासजी कहते हैं कि सुमित्राजी ने इस प्रकार हमारे प्रभु (श्री लक्ष्मणजी) को शिक्षा देकर (वन जाने की) आज्ञा दी और फिर यह आशीर्वाद दिया कि श्री सीताजी और श्री रघुवीरजी के चरणों में तुम्हारा निर्मल (निष्काम और अनन्य) एवं प्रगाढ़ प्रेम नित-नित नया हो! सोरठा :

*** मातु चरन सिरु नाइ चले तुरत संकित हृदयँ। बागुर बिषम तोराइ मनहुँ भाग मृगु भाग बस॥75॥

भावार्थ:

माता के चरणों में सिर नवाकर, हृदय में डरते हुए (कि अब भी कोई विघ्न न आ जाए) लक्ष्मणजी तुरंत इस तरह चल दिए जैसे सौभाग्यवश कोई हिरन कठिन फंदे को तुड़ाकर भाग निकला हो॥75॥

चौपाई :

*** गए लखनु जहँ जानकिनाथू। भे मन मुदित पाइ प्रिय साथू॥ बंदि राम सिय चरन सुहाए। चले संग नृपमंदिर आए॥1॥

भावार्थ:

लक्ष्मणजी वहाँ गए जहाँ श्री जानकीनाथजी थे और प्रिय का साथ पाकर मन में बड़े ही प्रसन्न हुए। श्री रामजी और सीताजी के सुंदर चरणों की वंदना करके वे उनके साथ चले और राजभवन में आए॥1॥

*** कहहिं परसपर पुर नर नारी। भलि बनाइ बिधि बात बिगारी॥ तन कृस मन दुखु बदन मलीने। बिकल मनहुँ माखी मधु छीने॥2॥

भावार्थ:

नगर के स्त्री-पुरुष आपस में कह रहे हैं कि विधाता ने खूब बनाकर बात बिगाड़ी! उनके शरीर दुबले, मन दुःखी और मुख उदास हो रहे हैं। वे ऐसे व्याकुल हैं, जैसे शहद छीन लिए जाने पर शहद की मक्खियाँ व्याकुल हों॥2॥

*** कर मीजहिं सिरु धुनि पछिताहीं। जनु बिनु पंख बिहग अकुलाहीं॥ भइ बड़ि भीर भूप दरबारा। बरनि न जाइ बिषादु अपारा॥3॥

भावार्थ:

सब हाथ मल रहे हैं और सिर धुनकर (पीटकर) पछता रहे हैं। मानो बिना पंख के पक्षी व्याकुल हो रहे हों। राजद्वार पर बड़ी भीड़ हो रही है। अपार विषाद का वर्णन नहीं किया जा सकता॥3॥

श्री रामजी, लक्ष्मणजी, सीताजी का महाराज दशरथ के पास विदा माँगने जाना, दशरथजी का सीताजी को समझाना

*** सचिवँ उठाइ राउ बैठारे। कहि प्रिय बचन रामु पगु धारे॥ सिय समेत दोउ तनय निहारी। ब्याकुल भयउ भूमिपति भारी॥4॥

भावार्थ:

'श्री रामजी पधारे हैं', ये प्रिय वचन कहकर मंत्री ने राजा को उठाकर बैठाया। सीता सहित दोनों पुत्रों को (वन के लिए तैयार) देखकर राजा बहुत व्याकुल हुए॥4॥

दोहा :

*** सीय सहित सुत सुभग दोउ देखि देखि अकुलाइ। बारहिं बार सनेह बस राउ लेइ उर लाइ॥76॥

भावार्थ:

सीता सहित दोनों सुंदर पुत्रों को देख-देखकर राजा अकुलाते हैं और स्नेह वश बारंबार उन्हें हृदय से लगा लेते हैं॥76॥

चौपाई :

*** सकइ न बोलि बिकल नरनाहू। सोक जनित उर दारुन दाहू॥ नाइ सीसु पद अति अनुरागा। उठि रघुबीर बिदा तब मागा॥1॥

भावार्थ:

राजा व्याकुल हैं, बोल नहीं सकते। हृदय में शोक से उत्पन्न हुआ भयानक सन्तापहै। तब रघुकुल के वीर श्री रामचन्द्रजी ने अत्यन्त प्रेम से चरणों में सिर नवाकर उठकर विदा माँगी-॥1॥

*** पितु असीस आयसु मोहि दीजै। हरष समय बिसमउ कत कीजै॥ तात किएँ प्रिय प्रेम प्रमादू। जसु जग जाइ होइ अपबादू॥2॥

भावार्थ:

हे पिताजी! मुझे आशीर्वाद और आज्ञा दीजिए। हर्ष के समय आप शोक क्यों कर रहे हैं? हे तात! प्रिय के प्रेमवश प्रमाद (कर्तव्यकर्म में त्रुटि) करने से जगत में यश जाता रहेगा और निंदा होगी॥2॥

*** सुनि सनेह बस उठि नरनाहाँ। बैठारे रघुपति गहि बाहाँ॥ सुनहु तात तुम्ह कहुँ मुनि कहहीं। रामु चराचर नायक अहहीं॥3॥

भावार्थ:

यह सुनकर स्नेहवश राजा ने उठकर श्री रघुनाथजी की बाँह पकड़कर उन्हें बैठा लिया और कहा- हे तात! सुनो, तुम्हारे लिए मुनि लोग कहते हैं कि श्री राम चराचरके स्वामी हैं॥3॥

*** सुभ अरु असुभ करम अनुहारी। ईसु देइ फलु हृदयँ बिचारी॥ करइ जो करम पाव फल सोई। निगम नीति असि कह सबु कोई॥4॥

भावार्थ:

शुभ और अशुभ कर्मों के अनुसार ईश्वर हृदय में विचारकर फल देता है, जो कर्म करता है, वही फल पाता है। ऐसी वेद की नीति है, यह सब कोई कहते हैं॥4॥

दोहा :

***औरु करै अपराधु कोउ और पाव फल भोगु। अति बिचित्र भगवंत गति को जग जानै जोगु॥77॥

भावार्थ:

(किन्तु इस अवसर पर तो इसके विपरीत हो रहा है,) अपराध तो कोई और ही करे और उसके

फल का भोग कोई और ही पावे। भगवान की लीला बड़ी ही विचित्र है, उसे जानने योग्य जगत में कौन है?॥77॥

चौपाई :

*** रायँ राम राखन हित लागी। बहुत उपाय किए छलु त्यागी॥ लखी राम रुख रहत न जाने। धरम धुरंधर धीर सयाने॥1॥

भावार्थ:

राजा ने इस प्रकार श्री रामचन्द्रजी को रखने के लिए छल छोड़कर बहुत से उपाय किए, पर जब उन्होंने धर्मधुरंधर, धीर और बुद्धिमान श्री रामजी का रुख देख लिया और वे रहते हुए न जान पड़े,॥1॥

*** तब नृप सीय लाइ उर लीन्ही। अति हित बहुत भाँति सिख दीन्ही॥ कहि बन के दुख दुसह सुनाए। सासु ससुर पितु सुख समुझाए॥2॥

भावार्थ:

तब राजा ने सीताजी को हृदय से लगा लिया और बड़े प्रेम से बहुत प्रकार की शिक्षा दी। वन के दुःसह दुःख कहकर सुनाए। फिर सास, ससुर तथा पिता के (पास रहने के) सुखों को समझाया॥2॥

*** सिय मनु राम चरन अनुरागा। घरुन सुगमु बनु बिषमु न लागा॥ औरउ सबहिं सीय समुझाई। कहि कहि बिपिन बिपति अधिकाई॥3॥

भावार्थ:

परन्तु सीताजी का मन श्री रामचन्द्रजी के चरणों में अनुरक्त था, इसलिए उन्हें घर अच्छा नहीं लगा और न वन भयानक लगा। फिर और सब लोगों ने भी वन में विपत्तियों की अधिकता बता-बताकर सीताजी को समझाया॥3॥

*** सचिव नारि गुर नारि सयानी। सहित सनेह कहहिं मृदु बानी॥ तुम्ह कहुँ तौ न दीन्ह बनबासू। करहु जो कहहिं ससुर गुर सासू॥4॥

भावार्थ:

मंत्री सुमंत्रजी की पत्नी और गुरु वशिष्ठजी की स्त्री अरुंधतीजी तथा और भी चतुर स्त्रियाँ स्नेह के साथ कोमल वाणी से कहती हैं कि तुमको तो (राजा ने) वनवास दिया नहीं है, इसलिए जो ससुर, गुरु और सास कहें, तुम तो वही करो॥4॥

दोहा :

*** सिख सीतलि हित मधुर मृदु सुनि सीतहि न सोहानि। सरद चंद चंदिनि लगत जनु चकई अकुलानि॥78॥

भावार्थ:

यह शीतल, हितकारी, मधुर और कोमल सीख सुननेपर सीताजी को अच्छी नहीं लगी। (वे इस प्रकार व्याकुल हो गईं) मानो शरद ऋतु के चन्द्रमा की चाँदनी लगते ही चकई व्याकुल हो उठी

हो॥78॥

चौपाई :

*** सीय सकुच बस उतरु न देई। सो सुनि तमकि उठी कैकेई॥ मुनि पट भूषन भाजन आनी। आगें धरि बोली मृदु बानी॥1॥

भावार्थ:

सीताजी संकोचवश उत्तर नहीं देतीं। इन बातों को सुनकर कैकेयी तमककर उठी। उसने मुनियों के वस्त्र, आभूषण (माला, मेखला आदि) और बर्तन (कमण्डलु आदि) लाकर श्री रामचन्द्रजी के आगे रख दिए और कोमल वाणी से कहा-॥1॥

*** नृपहि प्रानप्रिय तुम्ह रघुबीरा। सील सनेह न छाड़िहि भीरा॥ सुकृतु सुजसु परलोकु नसाऊ। तुम्हहि जान बन कहिहि न काऊ॥2॥

भावार्थ:

हे रघुवीर! राजा को तुम प्राणों के समान प्रिय हो। भीरु (प्रेमवश दुर्बल हृदय के) राजा शील और स्नेह नहीं छोड़ेंगे! पुण्य, सुंदर यश और परलोक चाहे नष्ट हे जाए, पर तुम्हें वन जाने को वे कभी न कहेंगे॥2॥

*** अस बिचारि सोइ करहु जो भावा। राम जननि सिख सुनि सुखु पावा॥ भूपहि बचन बानसम लागे। करहिं न प्रान पयान अभागे॥3॥

भावार्थ:

ऐसा विचारकर जो तुम्हें अच्छा लगे वही करो। माता की सीख सुनकर श्री रामचन्द्रजी ने (बड़ा) सुख पाया, परन्तु राजा को ये वचन बाण के समान लगे। (वे सोचने लगे) अब भी अभागे प्राण (क्यों) नहीं निकलते!॥3॥

*** लोग बिकल मुरुछित नरनाहू। काह करिअ कछु सूझ न काहू॥ रामु तुरत मुनि बेषु बनाई। चले जनक जननिहि सिरु नाई॥4॥

भावार्थ:

राजा मूर्छित हो गए, लोग व्याकुल हैं। किसी को कुछ सूझ नहीं पड़ता कि क्या करें। श्री रामचन्द्रजी तुरंत मुनि का वेष बनाकर और माता-पिता को सिर नवाकर चल दिए॥4॥

दोहा :

*** सजि बन साजु समाजु सबु बनिता बंधु समेत। बंदि बिप्र गुर चरन प्रभु चले करि सबहि अचेत॥79॥

भावार्थ:

वन का सब साज-सामान सजकर (वन के लिए आवश्यक वस्तुओं को साथ लेकर) श्री रामचन्द्रजी स्त्री (श्री सीताजी) और भाई (लक्ष्मणजी) सहित, ब्राह्मण और गुरु के चरणों की वंदना करके सबको अचेत करके चले॥79॥